ISSN No.2349-4190

शोधायतन

वाणिज्य, कला, शिक्षा, समाजशास्त्र तथा ह्यूमेनिटीज पर
आईसेक्ट विश्वविद्यालय की शोध पत्रिका

Shodhaytan

AISECT University Journal of Commerce, Arts,
Education, Sociology and Humanities

Vol.-IV / Issue-VII UGC Approved Journal June-2017

शोध के चक्र ज्ञान का मार्ग रचें, लेकिन पहुंचाए
सामाजिक सशक्तिकरण तक

Published By
AISECT UNIVERSITY
Where aspirations become achievements.

Village-Mendua, Post-Bhojpur, Distt. Raisen (M.P.) India Pin-464993
City Office: 3rd Floor, Sarnath Complex, Opposite Board Office, Shivaji Nagar Bhopal-462016
www.aisectuniversity.ac.in

RABINDRANATH TAGORE UNIVERSITY

UGC Approved Journals

Shodhaytan (AUJ-STN)

- Multidisciplinary Academic Research

Indexing and Impact Factor :

INDEX COPERNICUS : 48609 (2018)

Read / Download More Articles

उद्यमीय प्रबंधन एवं क्लस्टर संकल्पना अंतर्गत सतत विकास की वाहक जजमानी प्रथा पर पश्चिमीकरण का प्रभाव

विनय वर्मा[1], तरूण बेदी[2]
[1,2]शोधार्थी, आईसेक्ट विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत.

सारांश

प्राचानी काल में जजमानी प्रथा आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था रही है, यह इसमें विभिन्न आवश्यकताओं यथा वस्तु, उत्पाद, सेवा आदि की पूर्ति विनिमय के माध्यम से की जाती थी। यह मध्यकाल एवं आधुनिक काल तक अनवरत चलती रही। औपनिवेशिक शासन के कुप्रभाव ने इसकी अन्योन्यश्रतिता को समाप्त कर इसे पंगु बना दिया अंततः सतत विकास की वाहक जजमानी प्रथा लुप्त हो गयी, किन्तु वर्तमान में भी इसकी प्रासंगिकता महसूस की जा रही है।

मुख्य बिन्दु *:–* जजमानी प्रथा, अन्योन्यश्रतिता, वर्ण, कारीगर, यजमान, गृहस्थ, श्रेणी, कृषि, जजमान, उद्यमीय प्रबंधन, क्लस्टर, कुटीर उद्योग, औद्योगिक कांति, औपनिवेशिक शासन।

I प्रस्तावना

प्राचीन काल में भूमि दान प्रथा के उत्थान तथा शहरों के पतन के कारण जो उत्पादन पद्धति उभरी उससे एक प्रकार की आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। इसमें आर्थिक उत्पादन के साथ–साथ सामाजिक समरसता भी रही जिसका दृष्टिकोण उद्यमीय रहा। इस प्रकार मुद्रा के आभाव में यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ जिसमें अधिकांश स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों, वस्तुओं, उत्पादनों और सेवाओं से ही विनिमय के माध्यम से की जाती थी। विभिन्न जातियों एवं उप जातियों में परस्पर अन्योन्यश्रतिता का संबंध पाया गया, जिससे सामूहिक एकता एवं सहभागिता का वातावरण व्याप्त था। इसी परस्पर निर्भरता के संबंध को ही जजमानी प्रथा की संज्ञा दी, जो विद्ज्जगत में काफी लोकप्रिय रही है। ग्राम समुदाय हमारे समाज की मूल इकाई रही है और इसमें ग्राम की सभी जातियाँ, ग्राम समुदाय के अंग रूप से ही व्यवस्थित रहीं। ये सभी जातियाँ मूलरूप से किसी न किसी व्यवसाय या पेशों पर आधारित रही हैं।

यह व्यवस्था बिना किसी बाधा को पार करते हुए प्राचीन काल से मध्यकाल एवं आधुनिक काल में प्रवेश कर गई, किन्तु भारत में यूरोपीय विशेषकर अंग्रेजों के आगमन से इस व्यवस्था में परिवर्तन होना प्रारंभ हुआ और बाद में यह अपनी पहचान को खोकर अंधकार में विलीन हो गयी।

II सतत विकास की पद्धति

जजमानी प्रथा भारत में प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक काल तक ग्रामीण समुदाय में विभिन्न जातियों के परिवारों के बीच एक सामाजिक और आर्थिक समरसता बनाए हुए थी, जिसमें एक परिवार दूसरे को संपूर्ण रूप से कुछ नियत सेवाएं प्रदान करता है। जैसे धार्मिक कर्मकांड, कृषि कार्य, लोहारगीरी, बढ़ईगीरी आदि। ये संबंध परंपरागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी तक चलते रहते हैं इन सेवाओं का भुगतान नकद की अपेक्षा फसल के एक नियत भाग के रूप में वस्तु विनिमय के माध्यम से किया जाता है।

सामाजिक व्यवस्था के आधार स्तंभों में वर्ण एवं जाति व्यवस्था का प्रमुख स्थान रहा है। समाज में मुख्य रूप से चार प्रकार की जातियों (वर्णों) का उल्लेख किया गया है जिनमें क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जातियाँ आती हैं ये जातियां जजमानी प्रथा के अंतर्गत समाज में एक दूसरे से पूर्णतः अन्तर्संबन्धित थीं।

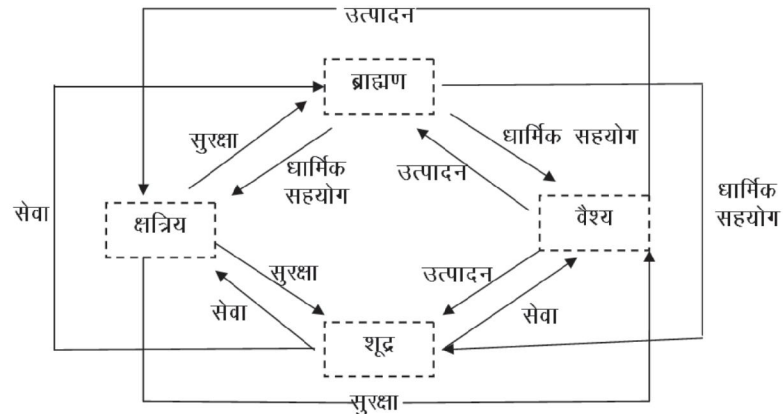

जजमानी प्रथा में कृषक या गृहस्थ ही जजमान होता था और बाकी सब लोग एक प्रकार से उसके पुरोहित या यजमान होते थे। ब्राह्मण पुरोहित, रक्षक क्षत्रिय के अतिरिक्त अन्य सेवा प्रदान करने वाले कुम्हार, तेली, नाई, धोबी, दर्जी, लुहार, बढ़ई, सुनार, चर्मकार, अहीर, बारी, माली आदि हुनर से संपन्न ग्रामीण कारीगर सभी कृषक या गृहस्थ को अपना जजमान मानते थे और वे उसके लिए सामग्री का निर्माण कर भेंट करते हैं। यह सामग्री दो प्रकार की होती थी– एक तो सीधे प्रत्यक्ष रूप से कृषि में उपयोग की जाने वाली जैसे हल या बैलगाड़ी बनाना तथा दूसरी वह जो कृषक और उसके परिवार के साथ–साथ अन्य सभी ग्रामीणों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हो।

ग्रामीण आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था का केन्द्र बिन्दु कृषक (गृहस्थ) की भी मुख्य जरूरतें जजमानी प्रथा से पूरी हो जाती थीं। संरक्षक परिवार स्वयं दूसरे का आश्रित हो सकता है, जिसे वह कुछ सेवाओं के लिए संरक्षित करता है और उनके द्वारा वह भी कुछ सेवाओं हेतु संरक्षण पाता है। पारस्परिक यह लेन–देन व्यवस्था समाज में संतुलन स्थापित करती प्रतीत होती है, **यह व्यवस्था अपने आप में पूर्ण एवं सतत विकास की वाहक थी।** इस प्रकार एक सुदृढ़ ग्राम के निर्माण में पारस्परिक सेवा हित के अंतर्गत जजमानी व्यवस्था संवहनीय व प्रासंगिक बनी रही।

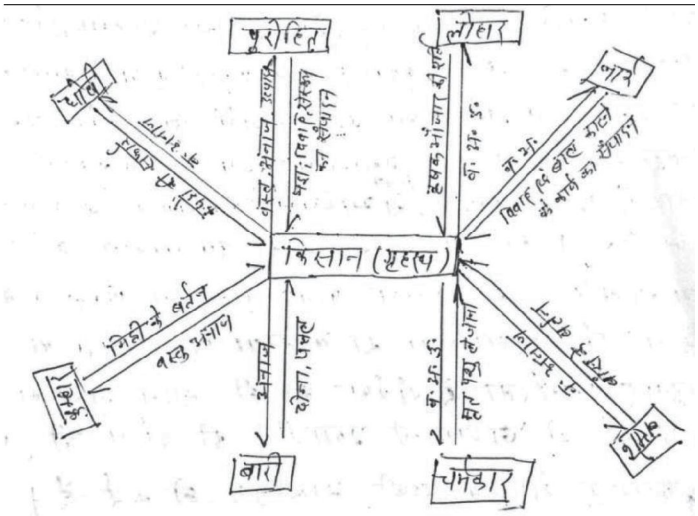

III क्लस्टर संकल्पना

आधुनिक क्लस्टर विकास की संकल्पना प्राचीन भारत में भी सामूहिक गतिविधियों के रूप में प्रचलित रही है। लगभग 200–300 कारीगरों का समूह होता था जो एक ही भौगोलिक क्षेत्र एवं समान सामाजिक–आर्थिक हितों के साथ ही समान सांस्कृतिक परिवेश में निवासरत रहते हुए समान व्यवसायिक गतिविधियों में संलग्न रहते थे। ऐसे व्यापारिक आर्थिक संगठनों के लिए 'श्रेणी' शब्द का उपयोग ईसा से भी आठ सौ वर्ष पहले से होता चला आ रहा था।

नासिक अभिलेख संख्या 15 में लिखा है कि अभीर राजा ईश्वरसेन के शासनकाल में 1000 कार्षापण कुम्हारों के समुदाय में, 500 कार्षापण तेलियों की श्रेणी में, 2000 कार्षापण पानी देनेवालों की श्रेणी में स्थिर संपत्ति के रूप में जमा किए गए, जिससे कि उनके ब्याज से रोगी भिक्षुओं की दवा की जा सके। स्कंदगुप्त के इंदौर ताम्रपत्र में तैलियों की एक श्रेणी का उल्लेख है। मथुरा से प्राप्त दूसरी शताब्दी के एक दस्तावेज में बुनकरों की दो श्रेणियों में से प्रत्येक के पास चांदी के 550 सिक्के जमा करने का उल्लेख मिलता है, ताकि उससे प्राप्त ब्याज से ब्राह्मणों तथा गरीबों को भोजन कराया जा सके। इसी प्रकार गुप्त सम्राट स्कंदगुप्त के एक लेख में इंद्रपुर के तेलियों की श्रेणि को कुछ धन उधार के रूप में देने का उल्लेख हुआ है, ताकि उससे मिलने वाले ब्याज से सूर्य मंदिर के दीपों के लिए तेल का खर्च निकलता रहे।

श्रेणी के अलावा पूग, नैगम, व्रात्य, पाणि, गण आदि नाम भी प्राचीनकाल में प्रचलित रहे हैं। ये सभी सामूहिक गतिविधियों के वाहक कारीगर जजमानी प्रथा के अभिन्न हिस्सों के रूप में पारस्परिक सहयोगात्मक प्रवृत्ति के साथ जुड़े हुए थे।

IV उद्यमीय प्रबंधन

जजमानी प्रथा को उद्यमिता प्रबंधन का वाहक इसलिए कहा गया है कि उपरोक्त सभी व्यावसायिक गतिविधियों में जुड़े कारीगर, कृषक, गृहस्थ आदि का दृष्टिकोण उद्यमीय रहा है ये केवल अपने भरण–पोषण के लिए ही नहीं जी रहे थे अपितु कुछ धन सामाजिक कार्यों में भी व्यय करते थे। ये सभी निर्माण क्षेत्र, सेवा क्षेत्र एवं व्यापार क्षेत्र तीनों कार्य करते थे। उपलब्धि की चाह, जोखिम, अनिश्चितता का सामना, प्रबंधकीय कौशल, संगठन व समन्वयन, साहसी, नवाचार आदि उद्यमीय

गुण के साथ–साथ ये समस्याओं का समाधान भी करते थे जैसा कि इंद्रपुर के तेलियों की श्रेणी ने किया था।

V उद्यमीय प्रबंधन में पश्चिमी देशों का प्रभाव

ब्रिटिश शासन का भारतीय कृषि पर प्रभाव अंतर्गत जवाहरलाल नेहरू ने सन् 1933 में कहा था कि ''खेती की व्यवस्था ढह चुकी है और समाज का नए सिरे से संगठन करना अनिवार्य है''।

'आज का भारत' में लिखते हुए रजनी पाम दत्त ने पूर्व ब्रिटिश भारत तथा ब्रिटिश भारत के बीच के अंतर का स्पष्ट वर्णन करते हुए लिखा है कि "हिंदुस्तान की इसी प्राचीन आर्थिक व्यवस्था पर विदेशी पूंजीवाद ने धावा बोला था, ब्रिटिश राज्य के रूप में पूंजीवाद ने इस व्यवस्था की नींव हिला दी। अंग्रेजों की जीत के पहले और लोगों ने भी हिंदुस्तान को जीता था, लेकिन उनकी विजय से इस जीत में बड़ा अंतर था। उन्होंने आर्थिक व्यवस्था को हाथ नहीं लगाया था, बल्कि वे खुद उसी में घुल–मिल गए थे। अंग्रेज हमेशा विदेशी रहे और घुलने के बजाय वे ऊपर से दवाब डालकर हिंदुस्तान से बाहर भेजने लगे। इसलिए ब्रिटिश राज में हिंदुस्तानी जनता की मुसीबत खास तौर से दर्दनाक है। पुरानी दुनिया बिछुड़ गई और नई का कहीं पता न लगा।"

दादा भाई नौराजी ने अपनी पुस्तक पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इडिया में सर्वप्रथम आर्थिक निकास की अवधारणा को प्रस्तुत किया उन्होंने बताया कि भारतीय उत्पाद का वह हिस्सा, जो जनता के उपभोग के लिये उपलब्ध नहीं था तथा राजनीतिक कारणों से जिसका प्रवाह इंग्लैण्ड की ओर हो रहा था, जिसके बदले में भारत को कुछ नहीं प्राप्त होता था, वह आर्थिक निकास है। उनका यह दृष्टिकोण धन के निकास के सिद्धांत के रूप में प्रचलित है।

जस्टिस महादेव गोविंद रानाडे, रोमेश चंद्र दत्त (द इकनॉमिक हिस्ट्री आफ इंडिया), गोपाल कृष्ण गोखले, जी सुब्रह्मण्यम अय्यर तथा पृथ्वीशचंद्र राय आदि ने अपने अध्ययनों से यह सिद्ध किया कि किस प्रकार अनाज एवं कच्चे माल के रूप में भारत का धन इंग्लैण्ड भेजा जाता है, और फिर किस प्रकार वह विनिर्मित उत्पादों का रूप लेकर भारतीय बाजार पर कब्जा करता है।

इंग्लैण्ड में हुई औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप विश्व में औद्योगीकरण की प्रक्रिया चल रही थी, वहीं दूसरी ओर भारत में इसका कुप्रभाव देखने को मिल रहा था। 1800–1850 ई. के मध्य भारत के हस्तशिल्प एवं कुटीर उद्योगों का पतन हुआ। सूती कपड़े एवं अन्य हस्तशिल्प की वस्तुओं पर 70 से 80 प्रतिशत तक आयात शुल्क लगा दिया गया। भारत में मुक्त व्यापार के अधिकार के साथ ही यहाँ पर विदेशी लोगों ने उद्योग लगाना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजों की इस नीति के कारण ब्रिटेन में निर्मित सूती वस्त्रों के लिए भारत एक बाजार बनकर रह गया। कुटीर उद्योग एवं हस्तशिल्प उद्योगों के ह्रास के कारण भारतीय जनसंख्या की निर्भरता कृषि पर बढ़ने लगी फलस्वरूप पहले से ही जर्जर एवं लड़खड़ाती हुई कृषि व्यवस्था धराशायी हो गयी।

औद्योगिक क्रांति ने विभिन्न मशीनों का आविष्कार कर दिया जिसके कारण इनकी सहायता से मजदूरों एवं श्रमिकों का उपयोग घटने लगा। नये–नये खुलते ब्यूटी सैलून, दोना पत्तल की उपलब्धता, फैशनेबुल जूते, स्टील के चमकदार बर्तन, मंहगे कपड़े आदि ने भारतीय समाज के व्यवसायिक जातियों को पूर्णरूप से बेरोजगार कर दिया।

III निष्कर्ष

औपनिवेशिक शासन के प्रभाव ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बाजार अर्थव्यवस्था में बदल दिया। इसने विभिन्न आवश्यक उत्पादों की उपलब्धता को पूर्ण कर दिया जिससे व्यक्ति परस्पर निर्भर न रहकर बाजार पर निर्भर रहने लगा और धीरे–धीरे अन्योन्यश्रतिता का मोहक बंधन टूटने लगा। वर्तमान में व्यवसायिक जातियां यथा– लोहार, चर्मकार आदि काम की तलाश में शहर की ओर पलायन करने लगीं हैं जिससे जजमानी प्रथा प्रभावित हो गयी है। विवाह व परिवार तथा संस्कारों के बदलते प्रतिमानों के कारण क्षत्रिय एवं पुरोहित वर्ग भी अपने जीवन यापन के लिए शहरों की आरे खिंचे चले आये। शहर में चर्मकार के अतिरिक्त अन्य जातियां भी जूते की दुकान खोल रहे हैं लोहे से संबंधित व्यावसाय लोहार तक सीमित नहीं रहा है। अर्थात् अब कोई भी कार्य किसी के लिए निषिद्ध एवं आवश्यक नहीं रह गया। ग्रामीण समाज में जहां पहले जाति ही व्यवसाय को निर्धारित करती थी वहीं वर्तमान में व्यवसाय एक जाति/वर्ग का निर्धारण करने लगा है।

संदर्भ सूची

[1] अद्भुत भारत – ए एल बाशम

[2] प्राचीन भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास – रामशरण शर्मा

[3] भारत का इतिहास – रोमिला थापर

[4] हिन्दू सभ्यता – राधाकुमुद मुखर्जी

[5] भारतीय सामंतवाद – रामशरण शर्मा

[6] प्राचीन भारत – प्रकाशन विभाग, भारत सरकार

[7] प्राचीन भारत का इतिहास – झा एवं श्रीमाली

[8] उद्यमिता विकास – मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी

[9] आधुनिक भारत – सुमित सरकार

[10] भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्‌भव और विकास – बिपिन चन्द्रा

[11] आज का भारत – रजनी पाम दत्त

[12] पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इडिया – दादा भाई नौरोजी

[13] भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि – ए आर देसाई

[14] आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास – सब्यसाची भट्‌टाचार्य

[15] भारतीय सिक्कों का इतिहास – गुणकर मूले